सद्धर्म्म सूत्रम्.

मूल हिंदीमां

श्रीयुक्त बाबु नवीन चंद्ररायें कर्युं.

तेनुं गुजरातीमां भाषान्तर

कर्त्ता

श्रीनारायण हेमचंद.

१८७७.

मुंबई.

"इगल" छापखानामां छाप्युं.

मुल्य २ आना.

भूमिका.

आ भारत देशमां घणा सूत्रोना ग्रंथो प्रसिद्ध छे ते सुत्रो प्राचीन कालना लोकोना व्यवहार अने धर्म्म बतावे छे. मनुष्य एक वखत संपूर्ण सत्य अवगत करी शकता नथी. जगत्नी अवस्था पर्यालोचना कर्याथी जोवामां आवे छे के मनुष्य कोई एक सत्य प्रथम उद्यमथी अथवा प्रथम चिंताथी अवगत करी शकतो नथी. आत्म प्रत्यय मुलक सत्य ते सर्व प्रथम चिंतानुं फल नथी. ईश्वरनुं स्वरूप परकाल इत्यादि विषय पण प्रथमथी असत्यमां आवृत हता, मनुष्य प्रथम ईश्वरनी जड ज्ञानथी पूजा करी छे. सर्व देशमां प्रथम आराधनानी भरभराटी ए प्रमाणे हती. ए जडोपासनामांथी क्रमे क्रमे परमात्मानी उपासनामां उपनीत थया छे. ए सर्व अवस्था एक काले आवश्यक हती, मनुष्य एकवार परमात्माना तत्वने कदी जाणताता नहीं. तेथी प्राचीन कालना जे सूत्रना ग्रंथो प्रसिद्ध छे तेमां घणाक आचारो आजना समयमां उपयोगी नथी. ते जाणीने अमारा श्रद्धास्पद श्रीयुक्त बाबु नवीनचंद्ररायें सद्धर्म्म सुत्र नामनुं पुस्तक प्रणय करवा मांड्युं ते हुं जेम जोतो गयो तेम तेम तेना विचारो घणा उत्तम मालम पडता गया तेथी में तेनी आज्ञा लईनें ते पुस्तकनुं भाषांतर करवा मांड्युं ते ईश्वरनी कृपाथी संपूर्ण थयुं छे, ते सज्जन पुरूषोनी आगळ रजु करूछुं. आ पुस्तकमां चार अध्यायछे तेमां सद्धर्म्मविशे नाना नाना संकृत गद्य लखाणना फकरा लखवामां आव्याछे. सत्य शोधक मनुष्योनें मानपूर्वक विनंतीछे के आ पुस्तकनुं अध्ययन करीनें विचार करवो के मनुष्योनो शो धर्म्म छे ते पादन करीनें ते प्रमाणें चालवानो यत्न करशो तो ईश्वर संतुष्ट थशे.

श्री नारायण हेमचंद.

लाहोर,
ता॰ १९ मी जुलई सन १८७७

ओं

सद्धर्म्म सूत्रम्.

प्रथमोऽध्यायः

(मूळ विश्वासः)

१. धर्म्म आत्मनिहितः स्वाभाविक उत्कृष्ट भाव विशेषः

वृत्ति—धर्म्म आत्मानो स्वाभाविक उत्कृष्ट भाव विशेष छे.

२. सच प्रभुत्वि भक्ति मूलकः

वृत्ति—अने तेनुं मूळ प्रभुमां भक्ति छे.

टीका—मनुष्य जेने पोताथी श्रेष्ठ जाणे छे अने पोते जेना आधीन समजे छे तेनें प्रभु कहे छे अने स्वभावतः तेमां भक्ति-भाव करे छे. ज्ञाननी न्यूनताथी मनुष्य विशेष अथवा कल्पित देवता विशेषनें ते प्रभु समजे छे, अने ज्ञाननी उन्नति थयाथी यथार्थ ईश्वरनें प्रभु समजे छे.

३. सद्धर्म्मः सनातन एकश्च आत्मनिहितत्वात्

वृ०—सद्धर्म सनातन छे अने एक छे केमके ते सर्वना आत्मामां निहित छे.

४. मतिभेदात्तस्य वैचित्र्यम्

वृ०—मति भेदथी तेनी विचित्रता दृष्ट थाय छे.

टी०—हिंदु, मुसलमान, ख्रीस्ति, बौद्ध, जैन, कानफाटी, वगेरे भिन्न भिन्न धर्म्म मनुष्यना मतिभेदथी थया छे अने सद्धर्म्मथी निकळ्या छे. धर्म्माभास अने भ्रांतिना संयोगथी एक धर्म्म अनेक प्रकारना दृष्ट थाय छे.

५. सम्मान्याः सर्वे धर्म्माः धर्म्मशास्त्राणिच

वृ०—सर्व धर्म्म अने धर्म्मशास्त्र संमानना योग्य छे.

टी०—केमके सद्धर्म थोडो घणो सर्व्वमां छे.

६. सत्यमेव ग्राह्यं सदुद्देश्य मात्रं सारं वा

वृ०—सत्यनुज ग्रहण करवु जोईये अथवा शुभ उद्देश्य तथा सारने.

टी०—यद्यापि सर्व्व धर्म्म अने धर्म्मशास्त्र समान्य योग्य छे, पण तेमांथी सत्यज्ञानज ग्राह्य छे असत्य नहीं. विधिओनो शुभ उद्देश्य मात्र अवलंबनीय छे, केमके सर्व्व विधिओनुं अनुकरण असंभव छे. तथा आख्यानादिनो सार मात्र लेवो जोईये.

७. मनुष्य रचनाया भ्रान्त्यविरहितत्वाद्विधीनामुद्देश्य मूलकत्वादवस्थाभेदाद्भिन्नत्वाच्च

वृ०—केमके मनुष्यनी रचना भ्रांति रहित थती नथी. बीजी विधिओ सर्व्व उद्देश्य मूलक अने अवस्थाभेदथी विभिन्न थाय छे.

टी०—सर्व्व शास्त्र मनुष्यनी रचना छे, अने मनुष्यनी रचना भ्रांति रहित थती नथी तेने वास्ते तेमांथी सत्य मात्र ग्रहण करवुं जोईये. विधिओ सर्व्व कोईने कोई उद्देश्यपर संस्थापित थाय छे अतएव तेनो शुभ उद्देश्य ग्रहणज यथेष्ट छे. देश काल पात्र अर्थात् अवस्थाभेदथी विधिओ भिन्न भिन्न प्रकारनी थाय छे, अने कदी कदी एवुं थाय छे के एक अवस्थामां जे विधि उपयोगी छे अन्य अवस्थामां तेना विरुद्ध विधि उपयोगी थाय छे, अतएव सर्व्व विधिओ सर्व्व आवस्थामां मानवी ए केवळ अनुचितज नथी परंतु असंभव छे. जे आवस्थामां जे विधिओ उपयोगी छे अने शुभ उद्देश्यने संयक् प्रकारे पूर्ण करे छे तेज विधि अवलंबनीय छे; ते १४ सूत्रमां स्पष्ट केहेवामां आव्युं छे.

८. सत्यनिर्णये विवेक एव कर्णः

वृ०—सत्यनो निर्णय विवेकथीज थायछे.

टी०—आ लोकमां ईश्वरदत्त विवेचना शक्तिना शिवाय सत्य निर्णयनो बीजो कंई उपाय नथी.

९. सच परीक्षा परविवेक पूर्व्वकःपरमात्म प्रसादलब्धश्चश्रेष्ठ.

वृ०—अने ते विवेक परीक्षा अने बीजाना विवेकनुं फल तथा परमात्मानी कृपा प्राप्त थयाथी श्रेष्ट थाय छे.

टी०—स्वीय विवेचना यद्यपि सत्य निर्णयनो प्रधान उपकरण छे पण ते भ्रांतिथी संपूर्ण मुक्त नथी ते वास्ते परीक्षाना योगे जे ज्ञान लाभ थाय अने बीजाओनी विवेचनाथी जे सिद्धांत थाय ए बन्नेने जाण्याथी जे विवेचना थाय छे तेमां भ्रांतिनी न्यूनता थाय छे. ए वास्ते एवी विवेचनाने श्रेष्ट कह्युं. पण भ्रान्तिनां आत्यन्तिक अभाव सर्व्व मनुष्यनी विवेचना अने परीक्षाथी पण संभव नथी एटलामाटे विवेचना शुद्धिनें सारूं परमात्माथी प्रार्थना करवी जोईए, तेनो प्रसाद लाभ थयाथी मनुष्य क्रमशः सत्पथनें प्राप्त थाय छे.

१०. अतः प्रार्थनाऽध्ययन परीक्षोपदेष्टार उपकारकाः

वृ०—ए वास्ते (परमात्माथी) प्रार्थना, अध्ययन, परीक्षा अने उपदेष्टा गुरु उपकारक छे.

११. सहज ज्ञानानुमान संभवाप्तवचनानि प्रमाणानि

वृ०—स्वाभाविक (अथवा प्रत्यक्ष) ज्ञान, अनुमान, अने विश्वास योग्यना संभव वाक्य प्रमाण छे.

१२. सत्यं सर्व्वतो ग्राह्यम्

वृ०—सत्य सर्व्वत्रथी ग्रहण योग्य छे.

१३ ग्रहीत सत्याभासमसत्यं त्याज्यं प्रतीतौ

वृ०—ग्रहीत सत्या भास असत्य ज्ञात थयाथीज त्याग करवा योग्य छे.

टी०—जे असत्य सत्यवत् प्रतीत थाय तेनें सत्यभास कहेछे. ज्यारे कोई प्रतीत सत्याभासनुं असत्य थवूं विदित थई जाय त्यारे तेनो त्याग करवो जोइये

१४. श्रेष्ठहितकरविधयो वलंबनीया अन्येत्याज्या:

वृ०—श्रेष्ट अने हितकारणा विधि अवलंबनीय छे अने तद्विरुद्ध विधि त्याज्य छे.

१५. असत्यनिराकरणे हानिकारि कुविधीनामुच्छेदे यत्न: श्लाघ्य:

वृ०—असत्यनां निराकरणमां अने हानि कारि कुविधिओनुं उच्छेदमां यत्न प्रशंसा योग्य छे.

इति प्रथमाध्याय:

द्वितीयोऽध्याय:

(धर्मादि भावानां वर्णनम्)

१. प्रेमो मुख्यो धर्म:

वृ०—प्रेम मुख्य धर्म छे.

२. परमेश्वरे पराभक्ति जीवेषु प्रीति: प्रेम:

वृ०—परमेश्वरमां पराभक्ति अने जीवोमां प्रीतिनुं नाम प्रेम छे.

३. गरिष्टे भक्ति: कनिष्टे स्नेह: समाने सौहार्द प्रीते रूपाणि.

वृ०—मोटाओनी प्रति भक्ति, नानाओना स्नेह, समानथी सौहार्द ए प्रीतिना रूपभेद छे.

४. प्रियस्येष्ट शुभ साधनं प्रेमानुष्ठानम् ।

वृ०—प्रियनुं हितकारक इष्ट साधननुं नाम प्रेमानुष्टान छे.

५. उपकृतिः प्रीतेः मुख्य क्रिया

वृ०—उपकार प्रीतिनी मुख्य क्रिया छे.

६. अन्यस्य सुखवर्द्धनं दुःख निराकरणञ्चोपकृतिः

वृ०—बीजाओनुं सुख वधारवुं अने दुःख दूर करवुं तेनें उपकार केहेवामां आवे छे.

७. स्वात्मनि प्रेमः सार्व्व भौमिकः

वृ०—पोतानां आत्मामां प्रेम सर्व्वनें छे.

८. आत्मोन्नतिः स्व प्रेमस्यानुष्ठानम्

वृ०—पोतानी उन्नति करवी ए पोतानुं प्रेमानुष्टान छे.

९. आत्मोन्नति रुपकृतिः परमात्मन आराधनंच सत्कर्म्म

वृ०—आत्मोन्नति, उपकृति, अने परमात्मानी आराधना ए सत्कर्म्म छे.

१०. तद्विरुद्धमसत्कर्म्म ।

वृ०—तेना विरुद्ध जे कर्म्म छे तेनें असत्कर्म्म कहे छे.

११. सत्कर्म्मणोऽनुष्ठानमसत्कर्म्मणस्त्यागो धर्म्मानुष्ठानम्

वृ०—सत्कर्म्मनुं अनुष्टान अने असत्कर्म्मनो त्याग ये धर्म्मानुष्टान छे.

१२. परमानन्दो मुक्ति र्वा धर्म्मस्य फलम्

वृ०—परमानंद अथवा मुक्ति ए धर्म्मनुं फल छे.

१३. सुख प्रीप्सा दुःखजिहासाच सार्व्व भौमिकी

वृ०—सुख पामवानी अने दुःख त्याग करवानी इच्छा सर्व्वने छे.

१४. वैषयिकाध्यात्मिक भेदेन सुखं द्विविधम्

वृ०—सुख बे प्रकारना छे, वैषयिक अने आध्यात्मिक.

१५. पूर्व्वमस्थायिशेषं स्थायि अत उत्कृष्टम्

वृ०—वैषयिक सुख अस्थायि छे परंतु आध्यात्मिक स्थायि छे अतएव प्रथमोक्तथी उत्कृष्ट छे.

१६. दुःखं सुख वद्द्विविधम्

वृ०—दुःख पण वैषयिक आध्यात्मिक भेदथी बे प्रकारनुं छे

१७. अनित्यमप्रियत्वादस्वाभाविकत्वात्

वृ०—परंतु ते अनित्य छे कारण के, ते कोईने प्रिय नथी अने अस्वाभाविक छे.

टी० - प्रियज स्वाभाविक थाय छे, जे अप्रिय छे, ते स्वाभाविक थई शकतुं नथी, दुःख अप्रिय छे, अतएव स्वाभाविक छे अने अनित्य छे.

१८. आध्यात्मिक सुखमानन्दः सपुण्येन लभ्यते

वृ०—आध्यात्मिक सुखने आनंद कहे छे. ते पुण्यथी प्राप्त थाय छे.

१९. दुःख रहितमानन्दः परमानन्दः

वृ०—दुःख रहित आनंद परमानंद छे.

२०. बल ज्ञान भाव भेदेनात्मोन्नतिस्त्रिधा

वृ०— आत्मोन्नति त्रण प्रकारनी थाय छे; जेवी के बल संबंधी, ज्ञान संबंधी अने भाव संबंधी उन्नति.

२१. बलं त्रिविधं शारीरिकं मानसिकं धर्म्मजन्यंचेति

वृ०—बल त्रण प्रकारना थाय छे; जेवाके शारीरिक, मानसिक अने धर्म्मनें माटे.

२२. धर्म्म जन्यं बलं पुण्यम्, परार्थायस्वार्थ हानिर्वा

वृ० धर्म्मनुं बल पुण्य कहेवाय छे; अथवा पारकाना सारू स्वार्थ हानिनें पुण्य कहे छे.

२३. ज्ञानं द्विविधं ब्रह्मविषयकं जगद्विषयकंचेति

वृ० ज्ञान बे प्रकारना छे ब्रह्मविषय अने जगतविषय.

२४ दयाद्युत्कृष्ट वृत्तीनां वृद्धिर्भावोन्नतिः

वृ० दयादि उत्कृष्ट वृत्तिओनी वृद्धिनुं नाम भावोन्नति छे.

टी० दया, क्षमा, परोपकार, प्रीति, भक्ति, स्नेह, त्याग,

तितिक्षा, नम्रता, धैर्य, शांति, आनंद, पवित्रता, सत्यनिष्ठा न्यायपरायणता वगेरे वासनाओने उत्कृष्ट वृत्ति कहे छे.

२५. स्वार्थाया न्यायेन परार्थ हानि हानि रेषणं वा पापम्

वृ०—स्वार्थने सारू अन्यायथी परार्थ हानि अथवा हानिनी इच्छानुं नाम पाप छे.

२६. आत्मनोऽपवित्र भावश्च

वृ०—आत्मानो अपवित्र भाव पण पाप छे.

२७. तत्तु कामादि निकृष्ट वृत्तीनां प्राबल्यान्न्यायावधे रतिक्रमाद्वा ।

वृ०—अने ते कामादि निकृष्ट वृत्तिओनी प्राबल्य अथवा तेनी न्याय अवधिना अतिक्रमथी थाय छे.

टी०—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, नैष्ठुर्य, द्वेष, भय, विषाद वगेरे वासनाओने निकृष्ट वृत्ति कहे छे. ए ज्यां सुधी पोतानी न्याय अवधिनी अंदर रहे छे त्यांसुधी मनुष्योने पाप स्पर्श करतो नथी, परंतु ज्यारे तेनुं प्राबल्य थाय छे अने ए पोतानी न्याय अवधिनुं अतिक्रम करी जाय छे त्यारे ते पापनुं कारण थाय छे.

२८. कर्त्तव्यस्याकरणं समयस्यच वृथा क्षेपणं प्रत्यवायः

वृ०—कर्तव्य न कर्याथी अने समयने वृथा क्षेपण कर्याथी प्रत्यवाय थाय छे.

२९. पापेन प्रत्यवायेनचात्मनोऽधोगतिस्तत्फलं दुःखम्

वृ०—पाप अने प्रत्यवायथी आत्मानी अधोगति थाय छे. अने अधोगतिथी दुःखनी प्राप्ति थाय छे.

३०. प्रयोजकवासना क्षयोऽनुतापश्च प्रायश्चित्तः

वृ०—पापमां नियुक्त करवावाली वासनानो क्षय अने अनुतापथी पापनुं प्रायश्चित थाय छे.

३१. ईश्वरानुकम्पया स्वयत्नेनच पाप नाशः

वृ०—ईश्वरनी कृपा अने पोताना यत्नथी पापनो नाश थाय-छे.

३२. पाप वासनाया नाशः परमानन्दस्य च प्राप्तिर्मुक्तिः

वृ०—पापनी वासनानो नाश अने परमानंदनी प्राप्ति ए मुक्ति केहेवाय छे.

३३. प्राणात्यये सुखावस्थायां वासः स्वर्गः

वृ०—प्राण वियोगना पछी सुखावस्थामां रेहेवुं तेनें स्वर्ग केहेवामां आवे छे.

३४. तथा दुःखावस्थायां वासो नरकः

वृ०—अने प्राणवियोगना पछी दुःखावस्थामां रेहेवुं तेनें नरक केहेवामां आवे छे.

३५. सत्संगतिः सद्ग्रन्थ पाठः परमात्मोपासना परोपकार आत्मशुद्धि विवेकाचारस्तद्विरुद्धानां त्यागश्च धर्मस्य मुख्य साधनानि ।

वृ०—सत्संग, सद्ग्रंथोनुं अध्ययन, परमात्मानी उपासना, परोपकार, चित्तशुद्धि, विवेचना पूर्वक आचार अने तेना विरुद्ध जे कर्म्म छे तेनो त्याग ए धर्मना मुख्य साधन छे.

टी०—सत्संग अने सद्ग्रंथोना अध्ययनथा सत्यनी प्राप्ति थाय छे अतएव ए धर्मनुं एक मुख्य साधन गणवामां आव्युं छे. कुसंग अनें अश्लील प्रस्तावाद पूर्ण असद्ग्रंथोना अध्ययनथा चित्त मलिन थाय छे अतएव ए त्याज्य छे. परमात्मानीज उपासना करवी कर्त्तव्य छे तने मुकीने सृष्ट वस्तु अथवा कल्पित वस्तुओनी उपासना अकर्त्तव्य छे केमके तेथी परमात्मानी उपासनामां व्यभिचार थाय छे. दानादिना योगे बीजाओनो उपकार करवो ए परोपकार छे, अक्षम अथवा अभाववान् सत्कर्म्मनिष्ट लोकोनेज स्वशक्तानुसार दान करवुं जोईए; सक्षम तथा

धनवानने दान करवुं वृथा छे. लोभ, अन्याय तथा प्रमादथी कोईनी हानि करवी न जोईए. असत्यभाव तथा निकृष्ट वृत्तिथी चित्त पूर्ण रह्याथी अशुद्ध थाय छे अतएव चित्तमां कुभावो नुं धारण करवुं न जोईए. सत्यभाव अने उत्कृष्ट वृत्तिओथी चित्त पूर्ण रह्याथी शुद्ध रहे छे अतएव एवुं साधन करवुं जोईये के जेथी चित्त शुद्ध रहे. चित्त परमात्मानुं निवास स्थान छे तेने पवित्र राख्याथी ब्रह्मदर्शन सुकर थाय छे. सामाजिक आचार केवल रीतिना वशवर्त्ती थईने करवुं न जोईये, विवेचनाथी जे आचार श्रेष्ट अने लोकोपकारक प्रतीत थाय तेज करवुं जोईये, हानिकारक खोटा आचारोनो त्याग करवो जोईए. रीतिना दासत्वथी मुक्त थइने विवेकपर चालवुं सत्य धर्म्मनुं एक मुख्य साधन छे. विवेकानुसार आचार सामाजिक संमतिथी यदि रीति बद्ध थाय तो ते रीतिनुं पालन श्लाघ्य छे, परंतु जे रीति अंध परंपरा चाली आवती होय अने ते हानिकारक तथा वृथा छे तेनुं अनुकरण अवश्य निंदनीय छे, कारणके ते धर्म्मनुं साधन नथी.

३६. परानिष्टेच्छा निकृष्ट भावानां न्याय्यावधे रतिक्रमो ऽनुपकृत्युद्देशके निन्दा क्रूरवचनं मृषाभाषणं वृथाभाषण मवैधहिंसा व्यभिचारोऽनर्थकी पीडास्तेयं कपटः प्रवंचना ऽन्यायोऽपकारश्च पाप कर्म्माणि ।

वृ०—पारकानुं नुकसान करवानी इच्छा, निकृष्ट वृत्तिओनी न्याय अवधिनुं अतिक्रम, उपकार जेनो उद्देश नथी एवी निंदा अने क्रूर वचन जुठुं बोलवुं अन्यायहिंसा, व्यभिचार, वृथापीडा, चोरी, कपट, प्रवंचना, अन्याय अने पारकानुं नुकसान करवुं ए पापकर्म्म छे.

३७. धर्म्म साधनानि कर्त्तव्यानि

वृ०—धर्म्मनुं साधन कर्त्तव्य छे.

३८. पाप कर्म्माणि त्याज्यानि

वृ०—पापकर्म्म त्याज्य छे.

३९. उपासनाभक्ति संयुता स्तुति प्रार्थना जप ध्यानात्मिका

वृ०—उपासना भक्ति युक्त थाय छे. स्तुति, प्रार्थना, जप अने ध्यान तेना अंग छे.

टी०—उपास्यना गुणानुवाद अने धन्यवाद स्तुति छे, तेना पासेथी कंई मांगववुं अने अपराध क्षमापन करवुं प्रार्थना छे तेना वर्णननो पाठ करवो तथा तेना गुणमय नामोनुं स्मरण जप छे. अने तेनुं चिन्तन ध्यान छे.

४०. सा मानसी गद्य पद्य वाणी संगीतैश्च

वृ०—अने ते मनथी थाय छे तथा गद्य पद्यमय वाणी अने गीतोथी पण थाय छे.

४१. ऐकान्तिकी, पारिवारिकी, सामाजिकीच

वृ०—उपास्यना त्रण प्रकारनी कर्त्तव्य छे; एकांतमां, पुत्र कन्यादि परिवार वर्गनी साथे मलीने अने सामाजिक भ्राता भगिनीओनी साथे मलीने.

४२. परमात्मनोऽन्यस्यनिषिद्धा भक्तेर्व्यभिचारत्वात्

वृ०—परमात्माथी भिन्न कोई सृष्ट तथा कल्पित वस्तुओनी उपासना न करवी जोईए केमके तेमा भक्तिनो व्यभिचार थाय छे.

(इति द्वितीयोऽध्यायः)

तृतीयोऽध्यायः

(सृष्ट सृष्टचोर्वर्णनम्.)

१. सृष्टं हि जगत् कौशलत्वात्

वृत्ति—जगत् सृष्ट छे कारणके कौशल छे.

टीका—कौशल विना सृष्टि स्वयं थई शकती नथी.

२. एकोद्देशसिद्धि फलाऽनेकवस्तु व्यापार समष्टिः कौशलम्

वृ०—अनेक वस्तु अने व्यापारोनी समष्टि जेनाथी एक उद्देशनी सिद्धि थाय तेने कौशल कहे छे.

टी०—दृष्टांत जेम घडीयाळमां अनेक वस्तु अने व्यापारनी समष्टिथी समय घोतन रूप एक उद्देश्य सिद्ध थाय छे तेने वास्ते तेने कौशल अर्थात ज्ञानवान कर्त्तानी रचना कहे छे. शरीरमां अनेक वस्तु अने व्यापार एकत्र थईनें जीवन रूप एक उद्देश्यनें सिद्ध करे छे अतएव शरीर कौशल छे, अर्थात् कोई ज्ञानवान कर्त्ता द्वारा सृष्ट थयुं छे जेनें ईश्वर कहे छे.

३. ज्ञाताऽऽत्मा

वृ०—जाणवा वालाने आत्मा कहे छे.

टी०—जे द्रव्यमां ज्ञानादि गुण छे तेने आत्मा कहे छे अने तेने चेतन पण कहे छे.

४. आत्मानोऽनेका अनेक विधाश्च

वृ०—आत्मा अनेक छे अने अनेक प्रकारना छे.

टी०—यथा मनुष्य, जलचर, खेचर भूचर पशु, लोकांतर निवासी जीव अने देवता अने सर्वथी श्रेष्ट परमात्मा.

५. जगत्स्रष्टा श्रेष्ठतम आत्मा परमात्मा

वृ०—जगत्‌नो रचयिता सर्वथी श्रेष्ठ आत्मा परमात्मा केहेवाय छे.

६. सत्वनाद्यनन्तः सर्व्वकारणत्वात्

वृ०—ते परमात्मा अनादि अने अनंत छे कारण के सर्व आदिमान वस्तुओनो कारण छे.

७. रूपाकारादि जड गुणरहित श्चेतनत्वात्

वृ०—रूप आकार वगेरे जडना गुणोथी रहित छे केमके (ते) चेतन छे.

टी०—चेतनमां जडना गुण होता नथी अने जडमां चेतनना गुण होता नथी.

८. विदेहः सर्व्वव्यापित्वात्

वृ०—ते देह रहित छे केमके सर्व्वव्यापी छे.

टी०—जे सर्वव्यापी छे ते परिमित देहमां बद्ध थइ शकतो नथी.

९. सर्व्वव्यापी सर्व्वान्तर्यामित्वात्

वृ०—ते सर्व्वव्यापी छे कारण के सर्व्वांतर्यामी छे.

१०. सर्व्वान्तर्यामी सष्ट्यावश्यकत्वात्

वृ०—ते सर्व्वांतर्यामी छे कारण के तेना होवा विना सृष्टी संभव नथी.

११. अतः सर्व्वज्ञः

वृ०— ते वास्ते ते सर्व्वज्ञ पण छे

टी०— जे सर्व्वांतर्यामी हश ते सर्वने जाणशे पण.

१२. सर्व्व शक्तिमान् जगत्कर्तृत्वात्

वृ०— ते सर्वशक्तिमान छे केमके जगत्‌नो कर्त्ता छे

१३. पूर्णः सर्व्व गणो पेतत्वात्

वृ०—ते पूर्ण छे केमके सर्व गुणोथी युक्त छे

१४. अनन्तस्तत्सीमानं नुमेयत्वात्

वृ०— ते अनंत छे केमके तनी सीमानो अनुमान थई शकतो नथी.

१५. मंगलमय स्तत्सृष्टे र्जीव मंगलो द्देशकत्वात्

वृ०— ते मगलमय छे केमके तेनी सृष्टिनो उद्देश जीवनुं मंगल छे.

१६. आनंदमय स्तस्मिन्दुःख भावस्या हे तुकत्वात्

वृ०— ते आनंदमय छे केमके तेमा दुःख थवानुं कंई हेतु नथी.

१७. पवित्रः स्वानन्देन निरस्त निकृष्ट वासनत्वात्

वृ०— ते पवित्र छे केमके तेना आनंदनी आगळ निकृष्ट वासनाओ जइ शकती नथी.

१८. निर्विकारः पूर्णत्वात्

वृ०—ते निर्विकार छे केमके पूर्ण छे.

टी०—जे पूर्ण छे तेने विकृत थवानी आवश्यकता नथी. अपूर्णमाज विकृति संभव छे पूर्णमां संभव नथी.

१९. अेकोऽद्वयस्तत्कार्य स्यै कोद्देशकत्वात्परस्पर संबद्धत्वाच्च भिन्न कार्य स्या प्रतीतेश्च

वृ०—ते एक छे तेना तुल्य बीजो नथी, केमके तेनुं (जगत्रूप सर्व) कार्य एकोद्देशक अने परस्पर संबंध छे, अने ए कार्योथी भिन्न अन्य प्रकार कार्योनी प्रतीत थती नथी.

टी०—जीवनुं मंगळज सर्व जगत्नो एक मात्र उद्देश्य छे. एवुं बीजुं जगत् कोई नथी जेनो उद्देश्य जीवोनो मंगलथी भिन्न हो.

२०. अपरिमेयो मनसोऽगम्यत्वात्

वृ०—ते अपरिमेय छे केमके मन तेनुं परिमाण करी शकतो नथी.

२१. अस्ति भक्तानुभूतत्वादनुमेयत्वाच्च

वृ०—ते छे कारण के भक्तलोक तेनो अनुभव करे छे, अने (कार्य कारण रूप) अनुमानथी पण ते सिद्ध थाय छे.

२२. सर्व्वाधिपो नियन्तृत्वात्

वृ०—सर्वनो ते अधिपति छे केमके सर्व नियन्ता छे.

२३. न्यायवान् मंगलमयत्वात्

वृ०—ते न्यायवान छे केमके मंगलमय छे.

२४. दया धारश्च

वृ०—अने ते दयानो आधार छे.

२५. जगज्जड चैतनवत्

वृ०—जगत् जड अने चेतन बे प्रकारनी वस्तुओनी समष्टि छे.

२६. जडास्तब्धा प्ररोहण शीलाश्च

वृ०— जड बे प्रकारना थाय छे स्तब्ध अने प्ररोहणशील.

टी०—माटी, पथ्थर, स्तब्द जड वस्तु छे अने उद्भिज्ज वृक्षादि प्ररोहणशील जड वस्तु छे.

२७. चेतना विवेकिनोऽविवेकिनश्च

वृ०— चेतन बे प्रकारना छे विवेकी अने अविवेकी.

२८. विवेकीमनुष्यात्मा देवात्माच

वृ०— मनुष्यनो आत्मा अने देवतानो आत्मा विवेकी छे.

टी०— अन्यलोकवासी मनुष्यना तुल्य तथा मनुष्यथी श्रेष्ट जीवोने देवता करे छे.

२९. मनुष्यात्मानः स्थूल देहवन्तस्त द्रहिताश्च

वृ०— मनुष्यनो आत्मा बे प्रकारना छे स्थूल देह धारी अने स्थूल देह रहित.

टी०— स्थूल देह त्याग अर्थात् मृत्युना पछी मनुष्यात्मा सूक्ष शरीर विशिष्ट तथा अशरीरी रहे छे.

३०. मनुष्याणां देहोजड आत्मा चेतनः

वृ०—मनुष्यना देह जड छे आत्मा चेतन छे.

३१. मन बुद्धि भोगेच्छा वासना आत्मनो गुणः

वृ०— मन, बुद्धि, भोग इच्छा अने वासना मनुष्यात्माना गुण छे.

३२. कर्तृत्वं शक्तिः

वृ०—कर्तृत्व तेनी शक्ति छे.

३३. अहं ज्ञानं स्वरूपः

वृ०— अहं ज्ञान तेनुं स्वरूप छे.

३४. व्याप्तिः संबंधः

वृ०—व्याप्तिद्वारा (जडनी साथे) तेनो संबंध छे.

३५. उद्भवोन्नति विशिष्टाऽमरः

वृ०—उत्पत्ति, उन्नत्ति अने अमर थवुं तेनुं लक्षण छे.

३६. परिमित शक्तिर पूर्णः

वृ०—तेनी शक्ति परिमित छे अने ते (स्वभावतः) अपूर्ण छे.

३७. लोक यात्री परमात्मनिलयः

वृ०—ते अनेक लोकोमां भ्रमण करीने परमात्मामां विश्राम करे छे.

(संज्ञा)

३८. आविष्कर्त्तारो महात्मानोऽवतारा व कथ्यन्ते.

वृ०—धर्म तथा विद्याना तत्वने आविष्कार करवावाला महात्मा लोक अवतार केहेवाय छे.

टी०— ईश्वरना सत्व गुणनो मोटो अंश जे आत्मामां उतरे तेने अवतार कहे छे.

३९. धर्मादि सर्वविद्यानामाविष्कारेणोन्नतिः

वृ०—धर्मादि सर्व विद्याओनी उन्नति आविष्कारथी थाय छे.

४०. मननशीलाः शास्त्रकर्त्तारश्च मुनयो ऋषयोवा.

वृ०—मननशिल अने शास्त्र कर्ता मनुष्य मुनि तथा ऋषि. कहवाय छे

४१ उपदेष्टार आचार्यो गुरवो वा

वृ०—धर्म्मोपदश करवा वाला मनुष्य आचार्य तथा गुरु केहवाय छे.

४२. सत्स्वभावाः सत्कर्मशीला उपकार निरताः साधवः

वृ०—जे लोक सत्स्वभाव, सत्कर्मशील अने उपकार नियत छे ते साधु केहवाय छे.

४३. आचार्य्या अध्यापका याजकाः साधवो मुनयश्च ब्राह्मणाः

वृ०—आयार्य्य, अध्यापक, यांजक साधु मुनि ब्राह्मण केहेवाय छे.

४४. राजानो राजकर्मचारिणो रक्षकाश्च क्षत्रियाः

वृ०—राजाओ राज कर्मचारि अन रक्षक क्षत्रिय केहवाय छे.

४५. वित्तोपार्जकाः कृषक शिल्पि वणिकादयो वैश्याः

वृ०—अन्नादिन उत्पन्न करवावाला कृषक (खडुत) शिल्पि वाणिकादि वैश्य केहेवाय छे.

४६. सेवकाः शूद्राः

वृ०—शारिरिक सेवा करवावाली शूद्र केहेवाय छे.

४७. शिक्षा ब्रह्मचर्य्यं वित्तोपार्जनं गृहस्थितिर्देश दर्शनं-परिव्रजनं धनार्जनकर्म्मोपरति निस्पृहत्वंच संन्यास इत्याश्रमाः

वृ०—विद्यादि शिक्षानो काल ब्रह्मचर्य्याश्रम केहवाय छे वित्तोपार्जननो काल गृहस्थाश्रम छे, देश भ्रमण परिव्रजन केहेवायछे अने धनार्जन कर्म त्याग अथवा निस्पृहत्व सन्यासाश्रम छे.

४८. साधु समागमस्तीर्थः

वृ०—ज्यां साधुओनो समागम होय तेने तीर्थ कहे छे.

४९. आविष्कृत सत्य निबन्धा वेदाः

वृ०—आविष्कृत सत्य जे ग्रंथोमा लख्युं होय ते वेद छे.

(इति तृतीयोऽध्यायः)

चतुर्थोऽध्ययः

(व्यवहाराः)

१. सामाजिको भवेद मङ्गलोच्छेदकः

वृ०—सामाजिक थवुं अने अमंगलनो उच्छेदक.

२. उपकारा दान प्रदान परः

वृ०—(बीजाओथी अवश्यकतानुसार) उपकार ग्रहण करवुं अने (पोते बीजाओने साध्यानुसार) उपकार करवुं.

३. आलापाहारविहारो द्वाहा आयान प्रयाणीयौ विद्या धनार्जन मुपनयन माश्रितस्य पालनं परहितानुष्ठानंच व्यवहराः

वृ०—आलाप, आहार, विहार, जातकर्म अने नामकरण विद्या शिक्षा, धर्म्म शिक्षा, उपनयन, धनार्ज्जन, विवाह, आश्रितनुं पालन अने परहितानुष्टान व्यवहार केहवाय छे.

टी०— जे कर्म सामाजिक लोकोनी साथे मलीन कर्या जायछे तेने व्यवहार कहेछे.

४. व्यवहारा विवेकाचार मूलाः सदाचाराः

वृ०— विवेचना पूर्व्वक जे व्यवहार आचरित थाय छे तेने सदाचार कहे छे.

५. तए वानुष्ठेया इतरे त्याज्याः

वृ०—सदाचारज अनुष्ठेय छे; असदाचार (अर्थात् जे व्यवहार विवेक विरुद्ध होय) त्याग करवा योग्य छे.

६. आहार विहारो द्वाहा दुष्क्रियार त्तैर कर्त्तव्याः

वृ०—दुष्क्रियामां जे लोक लाग्या रह्या छे तेनी साथे आहार विहार, अने विवाह अकर्त्तव्य छे.

७. जाति वर्ण कुल वंशादि भेदा आप्रति बन्धकाः

वृ०—जाति, वर्ण कुल, वंशादि भेद आहारादि व्यवहारमां प्रतिबंधक नथी.

८. वर्ण भेदो गुण कर्म्मानुसारः शास्त्रीयो मान्यः

वृ०—गुण अने कर्म्मोना भेदानुसार वर्णभेद हिंदुशास्त्रमां विहित छे, ए प्रमाणेनो वर्णभेद मान्य थई शके छे.

टी०—संतोष, शांति, धैर्य क्षमा, वगैरे गुणोनी प्राबल्यता अने धर्मोपदेश विद्यादान पौरोहित्य वगेरे कर्म ब्राह्मण वर्णना लक्षण छे. तेजस्विता, यशमान विवर्द्धयिषा वगेरे गुणोनी प्राबल्यता अने राज्य रक्षा राज्य संबंधीय विविध कर्म क्षत्रिय वर्णना लक्षण छे. अर्जन स्पृहा बहुज्ञता वगेरे गुणोनी प्राबल्यता अने कृषि वाणिज्य शिल्प चिकित्सा वगेरे कर्म वैश्य वर्णना लक्षण छे. अधीनता नम्रता वगेरे गुणोनी प्राबल्यता अने शारीरिक सेवा वगेरे कर्म शूद्र वर्णना लक्षण छे. जे मनुष्य जे प्रमाणेना गुण अने कर्मनो वरण करे, अर्थात् पोताने वास्ते श्रेष्ट जाणीने अंगीकार करे, तेने ते वर्णनो केहवो जोईये.

९. जन्मानुसारोऽमान्योऽस्वाभाविकत्वात्

वृ०—जन्मानुसार वर्णभेद मान्य थइ शकतो नथी केमके ते अस्वाभाविक छे.

टी०—पिता पुत्रना गुण अने कर्ममां सर्वदा अभेद जेम स्वाभाविक छे तेमज तेना वर्णनो सर्वदा अभेद पण अस्वाभाविक

छे. अर्थात् पिता अने पुत्रना गुण कर्म यदि एक प्रमाणेना होय तो ते तेना समान वर्ण विशिष्ट केहेवुं जोईए; नही तो नही.

१०. वर्णानामुच्च नीचत्वंच प्रीति धर्म्म विरुद्धत्वात्

वृ०—कोई वर्णने उच्चत्व अने कोईने नीचत्व ए प्रकारनो भेद पण स्वीकार योग्य नथी.

टी०—एक वर्णने बीजा वर्णना करतां उच्चत्व तथा नीचत्व स्वीकार कर्याथी मनुष्य समाजमां प्रीति अने ऐक्यता वर्द्धननी हानि थाय छे, अने द्वेष अने घृणाना संचार थाय छे ए वास्ते कोई वर्णने नीच समजवुं न जोईये.

११. विवाहो रुचि पूर्व्वको जातस्मश्रू दार पुरुषस्य प्राप्त रजस्कापतिक स्त्रिया विधेयः

वृ०—जातस्मश्रु अदार पुरुषनुं प्राप्त रजस्का अपतिका स्त्रीना साथे विवाह बंधन विधेय छे, यदि परस्परना प्रति परस्परनी रुचि हो.

१२. नैकट्येन

वृ०—परंतु स्त्री पुरुषनो परस्पर संबंध होवाथी पोतामां विवाह थवुं न जोईये.

टी०—त्रण पुरुष पितृकुलमां अने त्रण पुरुष मातृकुलमां त्याग करीने विवाह करवुं सारु छे; केमके निकट संबंधमां विवाह कर्याथी संताननी शारीरिक हीनता अने भ्रातृभाव भगिनी भाव वगेरेनो व्यभिचार थाय छे.

१३. विद्या ज्ञानार्थ धर्म फला स्त्रीपुंभिरध्ययनीया ।

वृ०—प्रत्येक स्त्री पुरुषोये ज्ञानकरी अर्थ करी, अने धर्मसंबंधी विद्या शीखवी जोईए.

१४. शिक्षोपकारिणीच ग्रहणीया

वृ०—अने उपकारिणी शिक्षा विविध प्रकारनी लेवी जोईए

१५. शिशवस्तद्रक्षकैरध्यापनीयाः

वृ०— बालक बालिकाओनुं अध्यापन तेना रक्षकोनुं कर्तव्य छे.

१६. कृषि वाणिज्य शिल्पानि धनार्ज्जनस्य श्रेष्ठो पायः

वृ०—धनोपार्जननो श्रेष्ट उपाय कृषि वाणिज्य अन शिल्प छे.

१७. विद्या मध्यमोपायः

वृ०— धनो पार्जननो मध्यम उपाय विद्या छे.

टी०— चिकित्सा, राजव्यवस्थाज्ञान अध्यापन तेम वृत्ति वगेरे द्वारा धनोपार्जन विद्याथी धनोपार्जन केहवाय छे.

१८. सेवा निकृष्टोपायः

वृ०— शारिरिक सेवा धनोपार्जननो निकृष्ट उपाय छे '

१९. भिक्षाऽन्यायोपायेन धनार्जनं निषिद्धम्

वृ०— भिक्षा अने अन्याय उपाय द्वारा धनोपार्जन निषिद्ध छे.

२०. अक्षमस्या समयस्यतु भिक्षयाऽदोषः

वृ०— परंतु कर्माक्षम अन अवकाश हीन मनुष्यने भिक्षा द्वारा जीविका उपार्जन करवुं दोष नथी.

टी०—वृद्ध अने विकलांग मनुष्य कर्माक्षम थाय छे परोकारादि सारा कामोमां एवा रत छे के तेने स्व परिश्रम द्वारा स्वजीविका उपार्जनने वास्त समय मलतो नथी ते असमय तथा अवकाश हीन केहेवामां आव्या छे.

२१. कृतविद्य नरनारीणां धर्म्माचार्य्य समीपेनयनं धर्म्मोपदेश ग्रहणार्थमुपनयनम् ।

वृ०— कृतविध नरनारीआए धर्मोपदेश ग्रहणना निमित्त धर्माचार्यना समीप जवुं ते उपनयन केहेवाय छे.

२२. परिणयायान प्रयाणायोपनयना दयो ब्रह्मोपासना पूर्वकाः

वृ०— जातकर्म, नाम करण, उपनयन विवाह, अन्त्येष्टि, श्राद्ध वगेरे क्रिया ब्रह्मोपासना पूर्वक करवां जोईए.

२३. मृत पतिकायाः सुखीपत्याः पुनरुद्वाहः

वृ०— जे स्त्रीनो पति मरी जाय तेने यदि ऐहिक दाम्पत्य सुखनी वासना बनी रहे, तो तेनुं पुनर्विवाह विधेय छे.

२४. पति परायणाया मृते पत्याव मुत्र प्रीप्सत्या ब्रह्मचर्य्य मुपकृतिश्च व्रतम

वृ०— परंतु कोई पति परायण विधवा स्त्रीने परलोकमां पोताना पतिनी साथ मलवानी इच्छा थी पुनर्विवाहेच्छा यदि न होय तो तेने जोईये के ब्रह्मचर्य अने परोपकार व्रत धारण करे.

२५. पुरुषस्याप्येवम्.

वृ०— विवाहादि विषयमां जेवा नियम स्त्रीना प्रति आदिष्ट छे तेवाज पुरुषना प्रति पण छे.

२६. विवाह ग्रंथ्यभेदनीयोऽत्यन्तानुपायमृते तदपि सामाजिकैः।

वृ०— विवाहित स्त्री पुरुषनो संबंध भग्न न थवो जोईए. परंतु यदि तेना परस्पर मेलनो कंई उपाय न रहे तो सामाजिक पंच तेने वियुक्त करी शके छे.

२७. मातृ पितृ भार्य्याऽनूढा कन्याऽप्राप्त वयस्क भ्रातृ पुत्रा क्षम ज्ञाति बंधु भृत्य पश्वाद्याश्रितानां पालनमावश्यकम् ।

वृ०— माता, पिता, भार्य्या, अविवाहिता कन्या, बालक भाई अने पुत्र, अक्षम ज्ञाति बंधु, भृत्य, पश्वादि आश्रितोनुं पालन अवश्य कर्त्तव्य छे.

२८. स्वदेश नगर समाजस्य जीवमात्रस्यच हितचेष्टो प्रकृतिर्वान्हिकं कर्म्म

वृ०— स्वदेश नगर समाजनुं अने जीवमात्रनुं हितान्वेषण तथा उपकार सज्जन मनुष्यना प्रात्यहिक कर्म छे.

२९. आलापे शिष्टता नम्रताऽदांभिकताऽचापल्यता सत्यता द्याचार: प्रशस्त:

वृ०— बीजानी साथे आलापमां शिष्टता, नम्रता, अदांभिकता, अचापल्यता, सत्यतादि आचार श्रेष्ट छे.

(इति चतुर्थोऽध्याय:)

समाप्तश्चायं ग्रन्थ: